स्व. मुखर्जी का प्रेरक जीवन

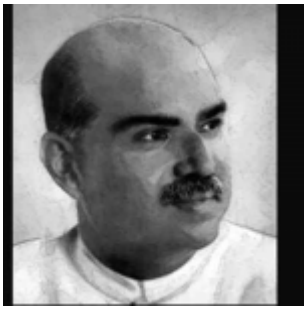

जीवन एक अवसर है, अपने ही जीवन के सृजन और पुनर्सृजन का अवसर। किसी की चार दिन की ज़िंदगी में सार होता है तो किसी का सौ बरस का जीना भी निस्सार होता है। किसी के एक आंसू पर हजारों दिल तड़प उठते हैं तो ऐसा भी होता है कई बार कि किसी के उम्र भर के रोने की भी कई परवाह नहीं करता है। भारत भूमि पर जिन महान व्यक्तित्वों ने अपने विचार, कर्म और आचरण से जीवन के सार का उपहार दिया है उनमें डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का नाम अत्यंत सम्मान और गौरव के साथ लिया जाता है।

छह जुलाई, 1901 को कोलकाता में श्री आशुतोष मुखर्जी एवं योगमाया देवी के घर में जन्मे डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। श्री आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति थे। 1924 में उनके देहान्त के बाद केवल 23 वर्ष की अवस्था में ही श्यामाप्रसाद को विश्वविद्यालय की प्रबन्ध समिति में ले लिया गया। 33 वर्ष की छोटी अवस्था में ही उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति की उस कुर्सी पर बैठने का गौरव मिला, जिसे किसी समय उनके पिता ने विभूषित किया था। चार वर्ष के अपने कार्यकाल में उन्होंने विश्वविद्यालय को चहुँमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर किया। शिक्षाविद, चिन्तक और अखंड भारत के स्वप्नदृष्टा डॉ. मुखर्जी का अवदान चिरस्मरणीय रहेगा।

जम्मू कश्मीर के भारत में पूर्ण विलय की माँग को लेकर डॉ. मुखर्जी द्वारा किया गया सत्याग्रह एवं बलिदान की गाथा भी अविस्मरणीय रहेगी। इतिहास साक्षी है कि 1947 में भारत की स्वतन्त्रता के बाद गृहमन्त्री सरदार पटेल के प्रयास से सभी देसी रियासतों का भारत में पूर्ण विलय हो गया, पर जम्मू कश्मीर का विलय पूर्ण नहीं हो पाया। तत्कालीन शासक शेख अब्दुल्ला ने जम्मू कश्मीर में आने वाले हर भारतीय को अनुमति पत्र लेना अनिवार्य कर दिया। 1953 में डॉ. मुखर्जी ने इसके विरोध में सत्याग्रह किया। पूरे देश में यह नारा गूँज उठा – एक देश में दो प्रधान, दो विधान, दो निशान, नहीं चलेंगे।डॉ. मुखर्जी जनसंघ के अध्यक्ष थे। वे सत्याग्रह करते हुए बिना अनुमति जम्मू कश्मीर में गये। इस पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया । 20 जून 1953 को उनकी तबियत खराब हुई और रात में ही अस्पताल में ढाई बजे रहस्यमयी परिस्थिति में उनका देहान्त हुआ। परन्तु, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने अपने बलिदान से जम्मू-कश्मीर को बचा लिया। अन्यथा उसका पकिस्तान में विलय हो जाता।

डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी एक मनस्वी शिक्षाविद, तेजस्वी चिन्तक और यशस्वी राजनेता थे। उन्हें एक प्रखर राष्ट्रवादी के रूप में जाना जाता है। वो पंडित जवाहर लाल नेहरु मंत्रिमंडल में उद्योग और

आपूर्ति मंत्री रहे पर मतभेदों के कारण त्यागपत्र देकर एक नयी राजनैतिक पार्टी 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना की। केंद्र सरकार में मंत्री बनने से पहले वो पश्चिम बंगाल सरकार में वित्त मंत्री रह चुके थे। मात्र 33 वर्ष की आयु वो कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बन गए थे। इस पद पर नियुक्ति पाने वाले वह सबसे कम आयु के व्यक्ति थे।

श्यामाप्रसाद अपनी माता पिता को प्रतिदिन नियमित पूजा-पाठ करते देखते तो वे भी धार्मिक संस्कारों को ग्रहण करने लगे। वे पिताजी के साथ बैठकर उनकी बातें सुनते। माँ से धार्मिक एवं ऐतिहासिक कथाएँ सुनते-सुनते उन्हें अपने देश तथा संस्कृति की जानकारी होने लगी। परिवार में धार्मिक उत्सव व त्यौहार मनाया जाता तो उसमें पूरी रुचि के साथ भाग लेते। गंगा तट पर वे मंदिरों में होने वाले सत्संग समारोहों में वे भी भाग लेने जाते।

उनके पिता आशुतोष मुखर्जी चाहते थे कि श्यामाप्रसाद को अच्छी से अच्छी शिक्षा दी जाए। उन दिनों कलकत्ता में अंग्रेजी माध्यम के अनेक पब्लिक स्कूल थे। आशुतोष बाबू यह जानते थे कि इन स्कूलों में लार्ड मैकाले की योजनानुसार भारतीय बच्चों को भारतीयता के संस्कारों से काटकर उन्हें अंग्रेजों के संस्कार देने वाली शिक्षा दी जाती है।उन्होंने एक दिन मित्रों के साथ विचार-विमर्श कर निर्णय लिया कि बालकों तथा किशोरों को शिक्षा के साथ-साथ भारतीयता के संस्कार देने वाले विद्यालय की स्थापना कराई जानी चाहिए। उनके अनन्य भक्त विश्वेश्वर मित्र ने योजनानुसार 'मित्र इंस्टीटचूट' की स्थापना की।

श्यामाप्रसाद को किसी अंग्रेजी पब्लिक स्कूल में दाखिला दिलाने की बजाए भवानीपुर में खोले गये 'मित्र इंस्टीटचूट' में प्रवेश दिलाया गया। आशुतोष बाबू की प्रेरणा से उनके अनेक मित्रों ने अपने पुत्रों को इस स्कूल में दाखिला दिलाया। वे स्वयं समय-समय पर स्कूल पहुँच कर वहाँ के शिक्षकों से पाठचक्रम के विषय में विचार-विमर्श किया करते थे। श्यामाप्रसाद ने सन 1917 में मैट्रिक किया तथा 1921 में बी०ए० की परीक्षा प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने बंगाली विषय में एम.ए. भी प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण किया और सन 1924 में क़ानून की भी पढ़ाई पूरी की। इस प्रकार यह वास्तव में प्रेरणास्पद है कि उन्होंने अल्पायु में ही विद्याध्ययन के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलताएँ अर्जित कीं, और शीघ्र ही उनकी ख्याति फ़ैल गई। सन 1924 में पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत के लिए पंजीकरण कराया। सन 1926 में वो इंग्लैंड चले गए और 1927 में बैरिस्टर बन कर वापस भारत आ गए। स्मरणीय है कि सन 1937 में उन्होंने गुरु रविंद्रनाथ टैगोर को कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण के लिए आमंत्रित किया।

डॉ० मुखर्जी जम्मू कश्मीर राज्य को एक अलग दर्जा दिए जाने के घोर विरोधी थे और चाहते थे की जम्मू कश्मीर को भी भारत के अन्य राज्यों की तरह माना जाये। उन्होंने देश की संसद में धारा-370 को समाप्त करने की जोरदार वकालत की। जम्मू-कश्मीर की अखण्डता के लिए अपना जीवन समर्पित करने वाले इस महान राष्ट्रपुरुष के जीवन से राष्ट्रहित को सर्वोपरि महत्त्व देने की प्रेरणा मिलती रहेगी।

————————————————

(आकाशवाणी से साभार)